उदारवाद (1885-1905 ई.)
[Moderates (1885-1905)]

आन्दोलन अथवा असंतोष का आरम्भिक स्वरूप सामान्यतः तीव्र नहीं होता व शुरूआत में मांगों एवं अधिकारों के लिए संवाद का माध्यम प्रयोग किया जाता है, इसलिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के आरम्भिक 20 वर्षों तक इसकी नीति एवं कार्यक्रम अत्यन्त ही उदार एवं प्रार्थना पर आधारित रहे थे, इस कारण 1885 से 1905 ई. तक के समय को 'उदारवादी (Moderates)' युग के नाम से जाना जाता है। उदारपंथी नेता भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नेतृत्व कर रहे थे, जिनमें प्रमुख थे – **दादा भाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, लालमोहन घोष, गोपाल कृष्ण गोखले, रासविहारी बोस, महादेव गोविन्द रानाड़े, ए.ओ. ह्यूम तथा उमेश चन्द्र बनर्जी आदि।**

कांग्रेस, जिसके नेतृत्व में देश ने बासठ वर्ष के कठिन संघर्ष के उपरांत स्वतंत्रता प्राप्त की थी, प्रारम्भ में अत्यन्त नरम थी। प्रारम्भिक वर्षों के दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, दीनशावाचा, उमेशचन्द्र बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा गोपालकृष्ण गोखले जैसे नेता थे। कुछ उदारवादी अंग्रेज–ह्यूम, विलियम बेडरबर्न, जार्ज यूल आदि भी कांग्रेस के सदस्य थे। 1885 से 1905 तक कांग्रेस पर इन्हीं उदारवादी नेताओं का प्रभाव रहा। ये लोग उदारवादी तथा परिमित राजनीति में विश्वास करते थे।

उदारवादियों की विशेषताएँ अथवा मनोवृत्तियाँ
(Characteristics of Moderates)

1885 ई. से 1905 तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नेतृत्व उदारवादियों ने किया, जो समृद्ध मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों का वर्ग था, जिसमें वकील, पत्रकार, डॉक्टर, इंजीनियर, संपादक एवं जमींदार सम्मिलित थे। इन उदारवादियों का सम्बन्ध बम्बई, कलकत्ता एवं मद्रास प्रेसीडेंसीज से था। आम व्यक्ति एवं कृषक वर्ग इससे बाहर ही रहा। इनकी प्रमुख मनोवृत्तियाँ इस प्रकार थी–

1. ब्रिटिश शासन के प्रति भक्ति भावना रखना।

2. अंग्रेजो की न्याय प्रियता में विश्वास करना।
3. ब्रिटिश सरकार को भारतीयों के लिए वरदान मानना।
4. भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में क्रमिक सुधारों पर बल देना।
5. संवैधानिक साधनों – प्राथर्ना पत्र, प्रार्थना सभा, याचिकाओं एवं स्मरण पत्रों इत्यादि में विश्वास करना।
6. प्रशासनिक सुधार के साथ भारतीयों के लिए स्वशासन प्राप्त करने पर बल देना।
7. त्याग की भावना का अभाव।
8. पश्चात् शिक्षा प्राप्त पश्चिमी सभ्यता के पोषक नेता।
9. भारतीय एकता में विश्वास रखना।
10. जनसंघर्ष एवं आन्दोलन से दूर रहना।

उदारवादियों के सिद्धान्त एवं उद्देश्य (Principles and Aims of Moderates)

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रारम्भिक दौर (1885–1905) के उदारवादियों के सिद्धांत एवं उद्देश्य निम्नलिखित थे–

(1) ब्रिटिश शासन के प्रशंसक व समर्थक (Admirer and Supporter of British Rule)–उदारवादी ब्रिटिश शासन के समर्थक एवं प्रशंसक थे। वे असहयोग या क्रांन्तिकारी विचारों के समर्थक नहीं थे। ये नेता अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित थे तथा इनके हृदय में ब्रिटिश शासन के प्रति कृतज्ञता की भावना थी। उनका कहना था कि ब्रिटिश शासन ने ही भारत को आधुनिक सभ्यता के मार्ग पर अग्रसर किया है तथा स्वतंत्रता, जनतंत्र आदि से प्रेम की भावना उत्पन्न की। आदर्शवाद, तर्कवाद्, शिक्षा और यातायात के साधनों द्वारा राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया और देश की बिखरी जनता को एक राष्ट्र के सूत्र में बांधने का कार्य किया। अतः कांग्रेस के प्रारम्भिक काल के नेता ब्रिटिश शासन के राजभक्त थे तथा भारत की राजनैतिक जागृति के लिए स्वयं को अंग्रेजो का कृतज्ञ मानते थे।

(2) क्रमिक सुधारों में विश्वास (Belief in Graduals Developments)–उदारवादी राष्ट्रवादी रूढ़िवादी थे। वे देश की शासन व्यवस्था में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं करना चाहते थे। उनका मुख्य उद्देश्य प्रशासन अर्थात् परिषद्, नौकरी, स्थानीय संस्था, रक्षा सेना आदि में सुधार करवाना था। दे क्रमिक सुधारों मे विश्वास करते थे तथा क्रांतिकारी परिवर्तनों के विरोधी थे। उनका विचार था कि राजनैतिक तथा प्रशासकीय क्षेत्र में धीरे–धीरे सुधार लाया जाये। 1906 में कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में दादाभाई नौरोजी ने स्वराज्य या स्वशासन की मांग की, वह भी ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में। यह भी स्वीकार किया कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लम्बी अवधि तक भारतीयों को प्रशिक्षण की आवश्यकता है। **आर.जी. प्रधान के शब्दों में "कांग्रेस के प्रारम्भिक दिनों के प्रस्तावों से पता चलता है कि उसकी मांगे अत्यन्त साधारण थीं।"**

(3) ब्रिटेन से स्थायी सम्बन्ध भारत के हित में (Permanent Relation with Briten is in The Interest of India)–उदार राष्ट्रवादी पाश्चात्य सभ्यता तथा विचार के पोषक थे।

उनके अनुसार ब्रिटेन से भारत का सम्बन्ध भारतीयों के लिये वरदान स्वरूप था। ब्रिटेन के प्रभाव के परिणामवरूप अंग्रेजी–साहित्य, शिक्षापद्धति, यातायात के साधन, न्याय प्रणाली तथा स्थानीय स्वशासन आदि भारत के लिए अमूल्य वरदान सिद्ध हुए। उनका मत था कि यूरोपीय विचार और दर्शन लोगों में स्वतंत्रता और लोकतंत्र के प्रति आदर उत्पन्न करता है। अतः भारत के लिए हितकर है कि ब्रिटेन से उसका अटूट सम्बन्ध बना रहे। जैसा कि **एनी बेसेन्ट ने कहा था " इस काल के नेता अपने को ब्रिटिश प्रजा मानने में गौरव का अनुमव करते थे।" 1905 में गोपालकृष्ण गोखले ने कांग्रेस अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए कहा था कि– "हमारा भाग्य अंग्रेजो के साथ जुड़ा हुआ है, चाहे वह अच्छे के लिए हो या बुरे के लिए।"** इसी तरह **फिरोज शाह मेहता ने कांग्रेस के छठे** अधिवेशन **में अध्यक्ष** पद से भाषण देते हुए कहा था कि **'इंग्लैण्ड और भारत का सम्बन्ध इन दोनों और समस्त विश्व की** आनेवाली **पीढ़ियों के लिए वरदान होगा।'**

इन नेताओं की यह भी मान्यता थी कि भारत और ब्रिटेन के हित परस्पर विरोधी नहीं हैं, किन्तु उन्होंने भारत की गरीबी समझी और यह अनुभव किया कि मुक्त व्यापार की नीति भारतीय उद्योगों के हित में नहीं है। **दादाभाई नौराजी** ने भारतीयों की गरीबी का बहुत सुन्दर दिग्दर्शन अपनी पुस्तक **'भारतीय गरीबी और ब्रिटिश शासन'** में किया। भारत की गरीबी के लिए उदारवादी ब्रिटिश शासन को दोषी तो समझते थे, किन्तु उनका इस बात पर बल नहीं था। जब 1905 में बंगाल विभाजन के विरोध में स्वदशी आंदोलन चला तो उदारवादी नेताओं ने उसका केवल आर्थिक दृष्टि से समर्थन किया, राजनैतिक शस्त्र के रूप में नहीं जैसा उग्रवादी समझते थे।

(4) अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास (Belief in Judiciary of British's)— उदारवादियों का ब्रिटिश राष्ट्र की आधारभूत न्यायप्रियता और सदाशयता में दृढ़ विश्वास था। उनका विश्वास था कि यदि इंग्लैण्ड में अंग्रेजों तक भारत की दशा का सही विवरण पहुँचा दिया जाये तो सब कुछ ठीक हो जाएगा। वे समझते थे कि नागरिकों तथा उनके अधिकारों के बीच नौकरशाही आड़े आ रही है।

(5) वैधानिक तरीकों में विश्वास (Belief in Constitutional Methods)–प्रारम्भिक कांग्रेसियों को शांतिपूर्ण एवं संवैधानिक आंदोलन की प्रभावोत्पादकता में पूर्ण विश्वास था। अतः वे क्रांति तथा संघर्ष की बात नहीं सोचते थे। हिंसा से उनका दूर–दूर तक कोई सम्बन्ध नही था। प्रार्थना–पत्रों, स्मरण–पत्रों और प्रतिनिधिमण्डलों द्वारा सरकार से अपनी न्याययुक्त मांगों को मानने का आग्रह किया। इस कार्य को कुछ लोगों ने राजनैतिक भिक्षावृत्ति की संज्ञा दी है। नरमदलीय राष्ट्रवादियों का उद्देश्य भारतीयों को जागृत करना था, ताकि वे अपने–अपने अधिकरों को समझ सकें। उदारवादी ब्रिटिश जनता को भारतीयों की कठिनाईयों की जानकारी भी देना चाहते थे। भारत की दुर्दशा की सही तस्वीर पेश करने के इरादे से उदारवादी नेताओं में से कुछ प्रमुख भारतीय नेताओं को प्रतिनिधिमंडल का सदस्य बनाकर ब्रिटेन भेजा गया। सन् 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश समिति

उदारवादियों के कार्यक्रम एवं माँगें
(Programmes and Demands of Moderates)

उदारवादियों की माँगें सीमित एवं पद्धति अत्यन्त विनम्र प्रार्थना की थी। उदारवादी नेताओं ने 1885 ई. से 1905 ई. तक कांग्रेस के माध्यम ब्रिटिश सरकार के समक्ष निम्नलिखित माँगें अथवा सुधारों के बारे में प्रार्थना की–

(1) संवैधानिक सुधार (Constitutional Reforms)–प्रारम्भिक राष्ट्रवादी अपने देश की सरकार में अपेक्षाकृत अधिक हिस्सा चाहते थे। राजनैतिक अधिकरों की प्राप्ति के लिए उदारवादियों ने संवैधानिक आंदोलन का समर्थन किया। 1885 से लेकर 1892 तक उन्होंने लेजिस्लेटिव कौंसिलों (व्यवस्थपिका सभा) के विस्तार और सुधार की मांग की। उन्होंने मांग की कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों को ही कौन्सिलों की सदस्यता मिले और कौंसिलों के अधिकारों को बढ़ाया जाए।

कांग्रेस की निरन्तर मांगों का ही परिणाम था कि ब्रिटिश सरकार ने 1892 का अधिनियम पारित किया, जिसके अनुसार व्यवस्थापिकाओं की सदस्य संख्या बढ़ा दी गई, अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था की गई और सदस्यों को वाद–विवाद तथा प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया। किन्तु यह अधिनियम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की मांगों की अपेक्षा कम था, क्योंकि व्यवस्थापिका में अभी भी सरकारी बहुमत बना रहा तथा वार्षिक बजट पर वोट देने का अधिकार उन्हें नही दिया गया। इन कारणों से भारतीय इन अधिनियम से असंतुष्ट रहे। उन्होंने इसे धोखाधड़ी की संज्ञा दी। उन्होंने कोन्सिलों मे भारतीयों को और स्थान देने तथा व्यापक अधिकार की मांग की। प्रारम्भिक राष्ट्रवादियों ने सार्वजनिक कोष पर भारतीय नियंत्रण की मांग की तथा अमेरिका स्वतंत्रता संग्राम के समय दिए गए नारे **"बिना प्रतिनिधित्व कोई कर नहीं"** को भी दोहराया। सन् 1905 में कांग्रेस ने स्वराज्य (ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन) की मांग की। उनके द्वारा स्वशासन की मांग स्वायत शासित ऑस्ट्रेलिया तथा कनाड़ा के आधार पर की गई थी। उदारवादी नेता गोपालकृष्ण गोखले द्वारा सर्वप्रथम 1905 ई. में बनारस मे स्वशासन की मांग रखी गई थी। बाद में 1906 ई. में कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में दादाभाई नौरोजी ने इसकी स्पष्ट व्याख्या की।

(2) आर्थिक सुधार (Economic Reforms)–उदारवादियों की राजनैतिक मांगे सीमित थीं, किन्तु आर्थिक दृष्टि से वे इस क्षेत्र में बुनियादी परिवर्तन चाहते थे। इन नेताओं ने ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों का विरोध किया और भारत के आर्थिक दोहन के अनवरत तथा प्रतिदिन होने वाले विदेशी आक्रमण के रूप में देखा, जो धीरे–धीरे भारत तथा भारतीय

उद्योग–धन्धों का विनाश कर रहा था। उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को कच्चा माल निर्यात करने वाले देश और ब्रिटिश उत्पादित वस्तुओं की मण्डी बनाए जाने के प्रयासों का घोर विरोध किया। भारत की गरीबी दूर करने के लिए उन्होंने सरकार को सुझाव दिया कि वह भारत में आधुनिक उद्योगों का तेजी से विकास करें। सरकार तट कर, संरक्षण एवं प्रत्यक्ष सरकारी सहायता द्वारा आधुनिक उद्योगों के विकास में मदद पहुंचाये, किन्तु सरकार द्वारा इस क्षेत्र में सहायोग नहीं करने पर उदारवादियों ने भारतीय उद्योगों के विकास के लिए स्वदेशी की अवधारणा अर्थात् भारत में उत्पादित–निर्मित वस्तुओं के प्रयोग तथा ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का प्रचार किया। 1896ई. में पुणे तथा महाराष्ट्र के अन्य शहरों में छात्रों ने स्वदेशी अभियान का आयोजन किया तथा सार्वजनिक रूप से विदेशी वस्त्रों की होली जलाई।

किसानों पर करों का बोझ कम करने तथा भू–राजस्व में कमी लाने के लिए भी प्रारम्भिक राष्ट्रवादियों ने प्रयत्न किये। बागानों के मजदूरों की दशा में सुधार नमक कर की समाप्ति, कराधान में कमी तथा सैनिक खर्च में कमी ये सभी आर्थिक हित से सम्बन्धित मामले उदार राष्ट्रवादियों की मांगों के अन्तर्गत थे। इस प्रकार भारत के प्रति ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गई आर्थिक नीतियों की विश्लेषणात्मक आलोचना इन प्रारम्भिक नेताओं द्वारा की गई, जो देश की महान सेवा थी।

(3) प्रशासनिक माँग (Administrative Demands)–उदारवादियों ने प्रशासनिक सेवाओं की उच्चतर श्रेणियों के भारतीयकरण की भी मांग की। उच्च पदों पर यूरोपीय एकाधिकार के कारण उन्हें ऊंची दरों पर भुगतान किया जाता था, इससे भारतीय प्रशासन बहुत खर्चीला हो गया था। सामान्य योग्यता वाले भारतीयों को कम वेतनों पर रखा जाता था। यूरोपीय अपने वेतन का एक बहुत बड़ा भाग भारत से बाहर भेज देते थे और उनकी पेंशनों का भुगतान भी इंग्लैण्ड में होता था। फलतः भारत से धन के निष्कासन में वृद्धि होती थी। अतः प्रारम्भिक राष्ट्रवादियों ने इन सेवाओं के भारतीयकरण पर बल दिया।,

उन्होंने न्यायिक शक्तियों को कार्यपालिका की शक्तियों से अलग करने की मांग की। उन्होंने ज्यूरी के अधिकारों में कटौती का विरोध किया तथा आर्म्स एक्ट (1878–लिटन) हटाने की मांग की।

(4) नागरिक अधिकारों की रक्षा (Security of Civil Rights)–आरम्भिक राष्ट्रवादियों ने नागरिक अधिकारों की रखा के लिए भी कदम उठाये। उन्होंने भाषण तथा प्रेस की स्वतंत्रता के महत्व को पहचाना तथा उनमें कमी करने के सरकारी प्रयत्नों का विरोध किया। इस समय राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रसार हो रहा था, जिसमें प्रेस की अहम भूमिका थी, 'केसरी'–में उत्तेजनात्मक लेख लिखने तथा राजद्रोह फैलाने के आरोप में जब बाल गंगाधर तिलक को गिरफ्तार किया गया व पुणे के दो नेताओं नाटु बंधुओं को बिना मुकदमा चलाये देश निकाला दे दिया गया, सारे देश की जनता ने इसे अपनी स्वतंत्रता पर प्रहार समझकर इसका विरोध किया। गिरफ्तारी के सम्बन्ध में 'अमृत बाजार पत्रिका' ने लिखा कि " इस विशाल देश में शायद ही कोई घर है जहां श्री तिलक अभी विषादमय चर्चा के विषय में नही है और उनकी

कैद को पारिवारिक विपत्ति नहीं समझा जाता है।" तिलक की गिरफ्तारी से सारा देश उत्तेजित हो गया और भारत में राष्ट्रवाद के विकास के लिए उर्वर भूमि प्राप्त हुई।

(5) अन्य मांगे (Other Demands)—उन्होंने सरकार से राज्य के कल्याणकारी कार्यों को संपादित करने की जिम्मेदारी लेने, प्राथमिक शिक्षा के प्रसार तथा तकनीकी एवं उच्चतर के विकास के लिए आग्रह किया।

किसानों की अवस्था में सुधार के लिए उन्होंने कृषि बैंक विकसित करने का अनुरोध किया। सिंचाई सुविधाओं के विस्तार चिकित्सा स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं तथा पुलिस व्यवस्था में सुधार भी इन उदारवादियों की मांगों से अछूते नहीं रहे।

इस काल के नेताओं ने भारतीय मजदूरों, जो गरीबी से विवश होकर रोजगार के लिए दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, मलाया, वेस्टइंडीज गये थे; के उत्पीड़न तथा प्रजातीय भेदभाव के तरफ भी सरकार का ध्यान आकृष्ट किया।

उपरोक्त मांगों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि तत्कालीन उदारपंथी कांग्रेसी नेता शासन तथा प्रशासन में कुछ सीमा तक भागीदारी एवं रियायतें चाहते थे। इनकी मांगों में कहीं भी अधिकार अथवा स्वामित्व का अहसास कराने की बात न थी और न पूर्ण स्वराज्य की परिकल्पना थी और न ही अंग्रेजों को देश से बाहर करने की मनोकामना थी।

उदारवादियों की रणनीति एवं कार्यप्रणाली का तरीका
(Methods of Moderates Working)

उदारवादी नेता प्रतिवर्ष कांग्रेस का अधिवेशन बुलाते, अपनी मांगों पर विचार विमर्श कर प्रस्ताव पारित करते थे, जिन्हें समाचार पत्रों एवं भाषणों के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाते। समय–समय पर सरकार को प्रार्थना पत्र एवं प्रस्ताव भी नम्रता पूर्वक पेश करते थे। स्मरण पत्रों एवं याचिकाओं में कहा जाता था कि **'हम हमारी लोकप्रिय सरकार से प्रार्थना करते हैं कि उपर्युक्त सुधारों को लागू करने की कृपा कर हमें अनुग्रहित करें।'**

इसके अलावा ब्रिटिश अधिकारियों को भारत की दशा से अवगत कराने हेतु अपने शिष्ट मण्डल इंग्लैण्ड भेजते थे तथा संवैधानिक साधनों में विश्वास कर अपनी मांगों को एक सीमा के अन्दर ब्रिटिश सरकार के समक्ष पेश करते थे।

कांग्रेस के प्रति सरकार का दृष्टिकोण
(Attitude of Government towards Congress)

आरम्भ से ही ब्रिटिश अधिकारी भारत में उभर रहे राष्ट्रवादी आंदोलन के विरोधी तथा राष्ट्रीय कांग्रेस को संदेह की नजर से देखते थे। गवर्नर जनरल डफरिन तथा अन्य ब्रिटिश अफसर इन राष्ट्रवादी नेताओं को **'निष्ठाहीन बाबू', 'राजद्रोही ब्राह्मण'** तथा **'खूंखार खलनायक'** की संज्ञा देते थे, किन्तु प्रारम्भ में उनका यह विरोध खुले रूप में व्यक्त नहीं होता था। यही कारण है कि कांग्रेस के इस नरम तथा राजभक्तिपूर्ण रूख के बावजूद उसे ब्रिटिश सरकार से किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिला। यद्यपि आरम्भ में सरकारी रूख

तटस्थता का था। इसी भावना से प्रेरित होकर लार्ड डफरिन ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकता अधिवेशन 1886 में प्रतिनिधियों को राजकीय भवन में एक भोज दिया। इसमें यह विशेष रूप से स्पष्ट किया गया कि निमंत्रण कांग्रेस के प्रतिनिधियों को नहीं, बल्कि कलकता से आए हुए विशिष्ट दर्शकों को है। कांग्रेस के तृतीय अधिवेशन 1887 में मद्रास के गवर्नर **"लार्ड कोनेमारा"** ने भी कांग्रेस के साथ सौजन्यपूर्ण व्यहार करते हुए स्वागत समिति की सहायता की थी, किन्तु 1887 के बाद सरकार का रूख कांग्रेस के प्रति कठोर होता चला गया।[1] अंग्रेजों ने कांग्रेस विरोधी तत्वों को बढ़ावा दिया। उन्होंने **कांग्रेस के विरूद्ध अलीगढ़ आंदोलन प्रणेता सर सैयद अहमद खां तथा बनारस के राजा** शिवप्रसाद को प्रेरणा दी कि वे कांग्रेस के प्रचार का प्रतिरोध करने के लिए एक संगठित भारतीय देशभक्त मंडल का गठन करें। 1887 में डफरिन ने राष्ट्रीय कांग्रेस पर प्रहार करते हुए उसे जनता के अल्पमत का प्रतिनिधि कहकर उसका मजाक उड़ाया। 1890 में सरकारी सेवकों को कांग्रेस में सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं रही। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में लार्ड कर्जन के काल में कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण बहुत शत्रुतापूर्ण हो गया। **1900 ई. में लार्ड कर्जन ने भारत मंत्री को लिखा था–"कांग्रेस अपने पतन की ओर लड़खड़ाती हुई जा रही है। भारत में मैं जब तक हूँ तब तक मेरी एक बड़ी महात्त्वाकांक्षा यह है कि मैं उसके शान्तिपूर्ण निधन में सहायता दूँ।"[2]** लेकिन कर्जन द्वारा उठाए गए कदमों ने राष्ट्रवादियों में असंतोष और भी गहरा कर दिया तथा सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता की प्रबल लहर दौड़ा दी।

कांग्रेस की बढ़ती लोकप्रियता (Increasing Popularity of Congress)

दिसम्बर 1885 में स्थापना के बाद से ही कांग्रेस दिन–प्रतिदिन लोकप्रिय होने लगी इसके प्रथम अधिवेशन 1885 में 72, दूसरे में 436, तीसरे में 607 और चौथे में 1248 प्रतिनियों ने भाग लिया। 1906 तक आते–आते इसकी लोकप्रियता अत्यधिक बढ़ गई और यह भारत के सुशिक्षित वर्ग की प्रतिनिधि संस्था के रूप में उभरकर सामने आई।

ए.ओ.हृयूम, सर विलियम बेडरबर्न तथा हैनरी कॉटन जैसे कुछ उदार अंग्रेजों के साथ–साथ भारत की सभी जातियों के देशभक्त इसके सदस्य थे। कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष उमेशचन्द्र बनीर्जी–भारतीय ईसाई, दूसरे दादाभाई नौरोजी–पारसी, तीसरे बदरूद्दीन तैयबजी–मुसलमान और चौथे तथा पांचवें अध्यक्ष जार्ज यूल तथा सर विलियम बेडरबर्न अंग्रेज थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रारम्भ से ही कांग्रेस का दृष्टिकोण विशुद्ध राष्ट्रीय था। इसने कभी भी किसी वर्ग विशेष के हितों का समर्थन नहीं किया, अपितु सभी प्रश्नों पर राष्ट्रीय